दीक्षादि-नक्षत्राणि

पारिव्राज्य क्रिया

प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगलग्नग्रहांशकम् ।

निर्ग्रन्थाचार्यमाश्रित्य दीक्षा ग्राह्या मुमुक्षुणा ॥१५७॥

विशुद्धकुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मतः ।

दीक्षायोग्यत्वमाम्नातं सुमुखस्य सुमेधसः ॥१५८॥

ग्रहोपरागग्रहणे परिवेषेन्द्रचापयोः ।

वक्रग्रहोदये मेघपटलस्थगितेऽम्बरे ॥१५९॥

नष्टाधिमासदिनयोः संक्रान्तौ हानिमत्तिथौ ।

दीक्षाविधिं मुमुक्षूणां नेच्छन्ति कृतबुद्धयः ॥१६०॥

सम्प्रदायमनादृत्य यस्त्विमं दीक्षयेदधीः ।

स साधुभिर्बहिःकार्यो वृद्धात्यासदनारतः ॥१६१॥

अर्थ :– मुमुक्षु को प्रशस्त तिथि, प्रशस्त नक्षत्र, प्रशस्त योग, प्रशस्त लग्न और प्रशस्त ग्रहों का अंश होने पर निर्ग्रन्थ आचार्य का आश्रय लेकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥१५७॥ जिसके कुल और गोत्र विशुद्ध हैं, जो सदाचारी है, जो परिपूर्ण शरीर से सम्पन्न है, जिसका मुख सौम्य है और जो सुमेधा—प्रतिभाशाली है, उसके पास दीक्षा की योग्यता कही गयी है ॥१५८॥ ग्रहों का उपराग होने पर, ग्रहण होने पर, सूर्य-चन्द्रमा पर परिवेष होने पर, इन्द्रधनुष होने पर, वक्र ग्रह का उदय होने पर, आकाश में मेघ पटल व्याप्त होने पर, नष्ट अथवा अधिक मास के दिन, संक्रान्ति पर और तिथि का क्षय होने पर कुशल बुद्धि आचार्य जन मुमुक्षुओं की दीक्षा विधि करना नहीं चाहते ॥१५९–१६०॥ जो निर्बुद्धि, पूर्वाचार्यों के इस सम्प्रदाय का अनादर करके दीक्षा प्रदान करते हैं, वे वृद्धों की पुरातन परिपाटी की आसादना में तत्पर होते हैं और साधुओं द्वारा बहिष्कृत करने योग्य हो जाते हैं ॥१६१॥

[सन्दर्भ : महापुराण, पर्व क्रमांक ३९ — भगवज्जिनसेनाचार्य]

****

मुनि दीक्षा का वर्णन

-छन्द : उपजाति-

ततस्तदाज्ञामृतपानपुष्टो

निर्बन्धगन्धद्विपवत्प्रहृष्टः ।

बाह्यान्तरङ्गं परिहृत्य सङ्गं

शस्ते मुहूर्त्ते स्थिरलग्नपूर्त्ते ॥१२॥

-छन्द : शार्दूल-विक्रीडित-

प्रीत्या चैत्यगृहादिदक्षिणदिशि क्षोणीतले प्रासुके

प्राचीसम्मुखमुत्तरास्यमथवा कृत्वा सरोजासनम् ।

आसीनश्चिकुरोत्करं भवलतां वा दक्षिणावृत्तितः

प्रोत्पाट्याविकृतिं जगत्त्रयनतिं स्वीकृत्य जाताकृतिम् ॥१३॥

-छन्द : उपजाति-

प्रदक्षिणीकृत्य जिनेन्द्रगेहे

प्रविश्य जैनप्रतिबिम्बपार्श्वे ।

रम्ये स्थले वा व्रतिपाज्ञयैव

क्रियां विधायात्तमहाव्रतादिः ॥१४॥

-छन्द : वसन्ततिलका-

स्थित्वा ततः प्रमुदितो गुरुवामवामपार्श्वे

श्रुत्वा प्रतिक्रमणमीडितयोगिवर्गः ।

योऽयं जिनोक्तविधिनाधिगतागमार्थ

श्चारित्रसम्पदमुदञ्चति तां गुणालीम् ॥१५॥

अर्थ :– तदुपरान्त, उन गुरु की आज्ञा रूप अमृत-पान से पुष्ट तथा बन्धन-रहित मदमत्त हाथी के समान अत्यन्त हर्षित होकर बहिरंग और अन्तरंग परिग्रह का परिहार करके प्रशस्त मुहूर्त्त और स्थिर लग्न की परिपूर्ति होने पर प्रीतिपूर्वक चैत्यालय आदि की दक्षिण दिशा में प्रासुक भूमि-तल पर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख पद्मासन लगा कर विराजमान होकर संसार रूप लता के समान सिर के केश-समूह का दक्षिणावर्त क्रम से भली प्रकार उत्पाटन करके निर्विकार एवं

त्रिलोक से नमस्कृत जन्मजात आकृति—दिगम्बर मुद्रा को स्वीकार कर प्रदक्षिणा करके जिनालय में प्रवेश कर जिन-प्रतिमा के समीप अथवा रमणीक स्थल पर व्रतियों के स्वामी दीक्षा गुरु आचार्य की आज्ञा से ही क्रिया करके दीक्षार्थी पुरुष महाव्रतादि से सम्पन्न होता है । तत्पश्चात् योगियों के समूह की स्तुति करके प्रमुदित होकर गुरु की बाँयी ओर बैठ कर प्रतिक्रमण सुन कर जो जिन प्रणीत विधि से आगम का अर्थ जान चुके हैं, ऐसे यह नव दीक्षित साधु उन प्रसिद्ध अट्ठाईस मूलगुण एवं चौंतीस उत्तरगुणों की पंक्ति रूप चारित्र की सम्पदा पर आरोहण करते हैं ॥१२-१३-१४-१५॥

[सन्दर्भ : आचारसार, अध्याय १, आचार्य वीरनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्ती]

****

दीक्षा-ग्रहण-मासफलम्

दीक्षा-स्वीकरणं चैत्रे बहुदुःख-फल-प्रदम् ।
वैशाखे रत्न-लाभश्च ज्येष्ठे च मरणं ध्रुवम् ॥१॥
आषाढे बन्धु-नाशश्च श्रावणे तु शुभावहः ।
प्रजाहनिर्भाद्रपदे सर्वत्र शुभमाश्विने ॥२॥
कार्तिके धन-लाभश्च मार्गशीर्षे शुभ-प्रदम् ।
पौषे तज्ज्ञान-हानिः स्यान्माघे मेधा-विवर्धनम् ॥३॥
फाल्गुने सुख-सौभाग्यं सर्वत्र परिकीर्तितम् ।
दीक्षा-कर्मफलं मासेष्वित्येवं च शुभाशुभम् ॥४॥

अर्थ :– चैत्र मास में दीक्षा स्वीकार करना, बहुत दुःख रूप फल को प्रदान करता है, वैशाख मास में रत्नलाभ, ज्येष्ठ मास में निश्चित मरण, आषाढ़ मास में बन्धुनाश, श्रावण मास में शुभदायक, भाद्रपद मास में प्रजा की हानि, आश्विन मास में सर्वत्र सुख, कार्तिक मास में धन की वृद्धि, मार्गशीर्ष मास में शुभदायक, पौष मास में दीक्षा स्वीकार करना उस दीक्षार्थी के ज्ञान की हानि, माघ मास में बुद्धि की वृद्धि और फाल्गुन मास में सर्वत्र सुख-सौभाग्य होता है । इस प्रकार विभिन्न मासों में दीक्षा लेने का शुभ और अशुभ कर्मफल परिकीर्तित—कहा गया है ॥

[सन्दर्भ : सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह]

****

दीक्षा-नक्षत्र-पटलम्

प्रणम्य शिरसा वीरं जिनेन्द्रममलव्रतम् ।
दीक्षाऋक्षाणि वक्ष्यन्ते सतां शुभफलाप्तये ॥१॥
भरण्युत्तरफाल्गुन्यौ मघाचित्राविशाखिकाः ।
पूर्वाभाद्रपदा भानि रेवती मुनिदीक्षणे ॥२॥
रोहिणी चोत्तराषाढा उत्तराभाद्रपत्तथा ।
स्वातिः कृत्तिकया सार्द्धं वर्ज्यते मुनिदीक्षणे ॥३॥
अश्विनीपूर्वफाल्गुन्यौ हस्तस्वात्यनुराधिकाः ।
मूलं तथोत्तराषाढा श्रवणः शतभिषक्तथा ॥४॥
उत्तराभाद्रपच्चापि दशेति विशदाशयाः ।
आर्यिकाणां व्रते योग्यान्युशन्ति शुभहेतवः ॥५॥
भरण्यां कृत्तिकायां च पुष्येऽश्लेषार्द्रयोस्तथा ।
पुनर्वसौ च नो दद्युरार्यिकाव्रतमुत्तमाः ॥६॥
पूर्वभाद्रपदा मूलं धनिष्ठा च विशाखिका ।
श्रवणश्चैषु दीक्ष्यन्ते क्षुल्लकाः शल्यवर्जिताः ॥७॥

अर्थ :– पवित्र महाव्रतों के स्वामी वीर जिनेन्द्र को प्रणाम करके शुभ फल की प्राप्ति हेतु सत्पुरुषों के लिये दीक्षा नक्षत्र कहे जाते हैं ॥१॥ १.) भरणी, २.) उत्तर-फाल्गुनी, ३.) मघा, ४.) चित्रा, ५.) विशाखा, ६.) पूर्वा-भाद्रपद एवं ७.) रेवती; यह ७ नक्षत्र मुनि दीक्षा में ग्राह्य हैं तथा १.)रोहिणी, २.) उत्तराषाढ़ा, ३.) उत्तरा-भाद्रपद एवं ४.) कृत्तिका के साथ-साथ ५.) स्वाति; ऐसे ५ नक्षत्र मुनि दीक्षा में वर्जित किये जाते हैं ॥२-३॥ जो विशद अभिप्राय के धारक हैं और शुभ के हेतुभूत हैं, ऐसे ज्ञानी जन १.) अश्विनी, २.) पूर्व-फाल्गुनी, ३.) हस्त, ४.) स्वाति, ५.) अनुराधा, ६.) मूल, ७.) उत्तराषाढ़ा, ८.) श्रवण, ९.) शतभिषा और १०.) उत्तरा-भाद्रपद; इन १० नक्षत्रों को आर्यिका-व्रत के विषय में योग्य बताते हैं ॥४-५॥ १.) भरणी, २.) कृत्तिका, ३.) पुष्य, ४.) अश्लेषा, ५.) आर्द्रा तथा ६.) पुनर्वसु; इन ६ नक्षत्रों में उत्तम आचार्य एवं उत्तम गणिनी आर्यिकाएँ आर्यिका-व्रत प्रदान नहीं कर सकते ॥६॥ १.) पूर्वा-भाद्रपद, २.) मूल, ३.) धनिष्ठा, ४.) विशाखा

और ५.) श्रवण; इन पाँच नक्षत्रों में जो क्षुल्लक दीक्षित किये जाते हैं, वे शल्य-रहित होते हैं ॥ ७॥

विशेषार्थ :– इस विवरण से निम्नलिखित ९ नियमों का बोध होता है :–

◦ श्रमण-श्रमणी दोनों के लिये निर्दिष्ट दीक्षा-नक्षत्र भिन्न होने से उनकी दीक्षा सामान्यतः साथ में नहीं हो सकती ।

◦ श्रमण-श्रमणी दोनों के लिये कृत्तिका नक्षत्र वर्जित है ।

◦ पूर्वा-भाद्रपद और विशाखा नक्षत्रों में मुनि और क्षुल्लक दीक्षाएँ एक साथ दी जा सकती हैं ।

◦ मूल और श्रवण नक्षत्रों में आर्यिका एवं क्षुल्लक दीक्षाएँ साथ में दी जा सकती हैं ।

◦ उत्तराषाढ़ा, उत्तरा-भाद्रपद एवं स्वाति नक्षत्र आर्यिका व्रत के लिये योग्य हैं, मुनि दीक्षा के लिये नहीं ।

◦ भरणी नक्षत्र मुनि के लिये योग्य होकर भी आर्यिका के लिये अयोग्य नक्षत्र है ।

○ मुनि और आर्यिका के लिये वर्जित एक भी नक्षत्र क्षुल्लक दीक्षा के लिये निर्दिष्ट नहीं है ।

◦ मुनि दीक्षा के सभी नक्षत्र क्षुल्लक दीक्षा के लिये भी शुभ हैं ।

○ आर्यिका दीक्षा के सभी नक्षत्र क्षुल्लिका दीक्षा के लिये भी शुभ हैं ।

॥इति दीक्षानक्षत्रपटलम् ॥

[सन्दर्भ : क्रियाकलाप – प्रभाचन्द्राचार्य]

****

मुनिदीक्षा-नक्षत्र-फलम्

दीक्षितोऽश्विनि-नक्षत्रे पञ्च-शिष्यगुरुर्भवेत् ।
मिष्टभोजी महाचार्यो चतुर्दशाब्द-जीवनः ॥१॥
तस्यापि तस्य शिष्याणामपमृत्युर्भवेद्-ध्रुवम् ।
भरणी-दीक्षणे मृत्युर्गुरोर्भवति वर्षतः ॥२॥
व्रतभ्रष्टः पुनर्दीक्षामाप्य जीवेद्-द्विषष्टिकम् ।
कृत्तिका-दीक्षितोऽष्टानां महाचार्यो गुरुर्भवेत् ॥३॥
जीवेत्पञ्च-नवत्यायुर्बुद्धितस्तस्करो भवेत् ।
रोहिणीतस्तपोग्राही सदा सुभोजनं व्रजेत् ॥४॥

परक्षेत्रे व्रताच्च्युत्वा पुनर्दीक्षामवाप्नुयात् ।
सप्तत्याब्दायुरेवायं श्रामण्येनात्र जीवति ॥५॥

अर्थ :– अश्विनि नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज पाँच शिष्यों के गुरु होते हैं, महान् आचार्य होते हैं, मिष्टान्न भोजी होते हैं एवं चौदह वर्ष जीवित रहते हैं । उनकी और उनके पाँचों शिष्यों की नियमतः अपमृत्यु होती है । भरणी नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज के गुरु की मृत्यु एक वर्ष में होती है और वे स्वयं महाव्रतों से भ्रष्ट होकर पुनर्दीक्षा को प्राप्त होकर बासठ वर्ष जीवित रहते हैं । कृत्तिका नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज आठ शिष्यों के गुरु होते हैं, महान् आचार्य होते हैं, तस्कर-बुद्धि होते हैं और पंचानबे वर्ष जीवित रहते हैं । रोहिणी नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज सदा उत्तम भोजन को प्राप्त होते हैं, अन्यत्र जाकर महाव्रतों से च्युत होकर पुनर्दीक्षा को प्राप्त होते हैं और मुनि अवस्था में सत्तर वर्ष आयु पर्यन्त जीवित रहते हैं ॥१–५॥

ऋक्षे मृगशिरा-नाम्नि महाचार्योऽस्ति दीक्षितः ।
आधारः शत-मर्त्यानामष्टाविंशति-शिष्यवान् ॥६॥
गणधरत्वमवाप्नोति विंशत्याब्दानि जीवति ।
आर्द्रायां दीक्षितः सङ्घान्निर्गतः स्याज्जितेन्द्रियः ॥७॥
द्वाषष्टि-वर्ष-मात्रायुर्भूत्वा जीवति भूतले ।
पुनर्वसौ तु दीक्षित्वा सप्तत्याब्दानि जीवति ॥८॥
त्रयस्त्रिंशदार्यिकाणां दीक्षको गुरुरिष्यते ।
दीक्षितः पुष्य-नक्षत्रे जीवति त्र्युत्तरं शतम् ॥९॥
पञ्च-मेधावि-शिष्याणां गुरुरालम्बनं सताम् ।
योऽश्लेषर्क्षे सुदीक्षाप्तः पूर्वं दुःखी ततः सुखी ॥१०॥
विदेशगमनं कृत्वा तूदासीनो गुरून्प्रति ।
द्विवारं च तपश्छित्वा षष्टिवर्षाणि जीवति ॥११॥
म्रियते सर्पदंशेन नक्षत्र-फलतो ध्रुवम् ।
मघा-नक्षत्र-दीक्षातः प्रशस्ताचारवान् भवेत् ॥१२॥
विनीतः षष्टि-वर्षाणि मुनिर्जीवति भूतले ।
पूर्वाफाल्गुनि-नक्षत्रे दीक्षामाप्तो गुरुर्भवेत् ॥१३॥
पञ्चदश-सुशिष्याणां व्रत-भ्रष्टो भवेत्ततः ।

व्रतानि पुनरादाय नवत्याब्दानि जीवति ॥१४॥

अर्थ :– मृगशिरा नामक नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज २८ शिष्यों के गुरु और १०० मनुष्यों के आधार होकर गणधर पद को प्राप्त होते हैं और बीस वर्ष जीवित रहते हैं । आर्द्रा नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज संघ से निकल जाते हैं और जितेन्द्रिय होकर पृथ्वी तल पर बासठ वर्ष जीवित रहते हैं । पुनर्वसु नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज सत्तर वर्ष जीवित रहते हैं तैंतीस आर्यिकाओं के गुरु माने जाते हैं ।पुष्य नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज सत्पुरुषों के आलम्बन तथा पाँच मेधावी शिष्यों के गुरु होकर एक सौ तीन वर्ष तक जीवित रहते हैं । अश्लेषा नक्षत्र में दीक्षा प्राप्त करने वाले मुनिराज पूर्व में दुःखी, पश्चात् सुखी होते हैं, वे विदेश गमन करते हैं किन्तु गुरुओं के प्रति उदासीन रहते हैं, दो बार दीक्षा छोड़ते हैं और साठ वर्ष जीवित रहते हैं । इस नक्षत्र के फल स्वरूप वे नियम से सर्प दंश से मरण को प्राप्त होते हैं । मघा नक्षत्र में दीक्षा लेने से मुनिराज प्रशस्त आचरण से सम्पन्न होते हैं, विनीत प्रकृति के होते हैं और पृथ्वी तल पर साठ वर्ष जीवित रहते हैं । पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में दीक्षा को प्राप्त हुए मुनिराज पंद्रह उत्तम शिष्यों के गुरु होते हैं, व्रत-भ्रष्ट होते हैं, पुनः व्रत स्वीकार करते हैं और नब्बे वर्ष जीवित रहते हैं ॥६–१४॥

उत्तराफाल्गुनी-दीक्षा दत्ते सूरि-पदं ध्रुवम् ।
मधुराहार-भोजित्वमशीति-वर्ष-जीवितम् ॥१५॥
हस्त-नक्षत्र-दीक्षात आचार्यो भवति ध्रुवम् ।
शतायुः पञ्च-नारीणां पञ्च-नृणां च दीक्षकः ॥१६॥
चित्रा-नक्षत्र-दीक्षात एक-शिष्य-गुरुर्भवेत् ।
जीवत्यशीति-वर्षाणि गुरु-रूपेण भूतले ॥१७॥
स्वाति-नक्षत्र-दीक्षातः षष्टि-वर्षाणि जीवति ।
दीक्षितो यो विशाखर्क्षे पञ्चदशमके दिने ॥१८॥
तपश्च्युतो भवत्येषोऽशीति-वर्षाणि जीवति ।
यस्य पुंसो भवेद्दीक्षा-नक्षत्रमनुराधिका ॥१९॥
सप्तति-पुरुषाणां तु स भवेद्दीक्षको गुरुः ।
मिष्ट-भोजी महाचार्यो नवत्याब्दानि जीवति ॥२०॥

अर्थ :– उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र की दीक्षा दीक्षित मुनिराज को नियम से आचार्य पद, मधुर आहार का भोजन एवं अस्सी वर्ष का जीवन देती है । हस्त नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज नियमतः आचार्य

बनते हैं, पाँच स्त्रियों और पाँच पुरुषों के दीक्षा प्रदाता होते हैं तथा शतायु होते हैं। चित्रा नक्षत्र की दीक्षा से मुनिराज एक शिष्य के गुरु होकर पृथ्वी तल पर अस्सी वर्ष जीवित रहते हैं। स्वाति नक्षत्र में दीक्षा लेने से मुनिराज साठ वर्ष जीवित रहते हैं। विशाखा नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज पंद्रहवें दिन दीक्षा छोड़ कर अस्सी वर्ष जीवित रहते हैं। अनुराधा नक्षत्र में जिन मुनिराज की दीक्षा होती है, ले सत्तर पुरुषों के दीक्षा गुरु होते हैं, मिष्टभोजी होते हैं और महान् आचार्य होकर नब्बे वर्ष तक जीवित रहते हैं ॥१५–२०॥

एकाकी विहरन्नित्यं ज्येष्ठा-नक्षत्र-दीक्षया ।
षट्पञ्चाशत्समायुष्क उग्रेण तपसा युतः ॥२१॥
मूल-नक्षत्र-दीक्षातो नवत्याब्दानि जीवति ।
अपमृत्यु-तपश्च्युत्वा मिष्ट-भोजनभाग्भवेत् ॥२२॥
पूर्वाषाढाख्यनक्षत्रे दीक्षितः श्रमणो भवेत् ।
उपसर्गसहो भीतिजयी तपश्च्युतोऽपि वा ॥२३॥
पुनर्व्रतं समादायाशीति-वर्षाणि जीवति ।
उत्तराषाढ-नक्षत्रे दीक्षातस्तपसः पतेत् ॥२४॥
तीव्ररुग्णदशां प्राप्य त्वपमृत्यु-च्युतो भवेत् ।
द्वि-स्त्री-पञ्च-नराणां च गुरुः षष्ट्याब्द-जीवनः ॥२५॥
श्रवणे दीक्षितो साधुर्द्वादशानां नृणां गुरुः ।
विंशत्युत्तरवर्षायुर्मिष्टान्नभोजनो भवेत् ॥२६॥

अर्थ :– ज्येष्ठा नक्षत्र की दीक्षा से मुनिराज नित्य एकल विहारी बन उग्र तपस्वी हो छप्पन वर्ष जीवित रहते हैं।मूल नक्षत्र की दीक्षा से मुनिराज नब्बे वर्ष जीते हैं लेकिन अपमृत्यु से बच कर और तप से नीचे आ कर मिष्ट भोजन को प्राप्त होते हैं। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज उपसर्ग सहन करने वाले, भय पर विजय को प्राप्त करने वाले, तप से नीचे आ कर पुनः महाव्रत अंगीकार करके अस्सी वर्ष जीवित रहते हैं। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज तप से पतित होते हैं, तीव्र रोग को प्राप्त होकर अपमृत्यु से बच निकलते हैं, दो स्त्रियों एवं पाँच पुरुषों के गुरु होकर साठ वर्ष जीवित रहते हैं। श्रवण नक्षत्र में दीक्षित साधु, बारह मनुष्यों के गुरु होते हैं, मिष्टान्न भोजी होते हैं तथा एक सौ बीस वर्ष की आयु वाले होते हैं ॥२१–२६॥

धनिष्ठा-दीक्षितः सूरिरशीत्याब्दानि जीवति ।

शतभिषाख्य-नक्षत्रे दीक्षितो दीक्षको भवेत् ॥२७॥

पञ्चानां पुरुषाणां च नवत्याब्दानि जीवति ।

पूर्वाभाद्रपदादीक्षो द्वादशानां नृणां गुरुः ॥२८॥

भवेदशीति-वर्षायुर्विहरन्नत्र भूतले ।

उत्तराभाद्रपन्नाम्नि नक्षत्रे दीक्षितो भवेत् ॥२९॥

द्वादशानां नराणां च नारीणां दीक्षको गुरुः ।

मिष्टान्नभुगशीत्यायुर्विहरन्नत्र भूचले ॥३०॥

रेवतीदीक्षितः सूरिर्मिष्टान्नभोजनो भवेत् ।

आचार्यपदतः सोऽपि विंशत्याब्दानि जीवति ॥३१॥

एवं नक्षत्र-मालायां दीक्षणे फलमिष्यते ।

आगमोल्लङ्घनं तस्माद्वर्ज्यते पूर्व-सूरिभिः ॥३२॥

अर्थ :– धनिष्ठा नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज अस्सी वर्ष जीवित रहते हैं । शतभिषा नामक नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज पाँच पुरुषों के दीक्षा गुरु होते हैं और नब्बे वर्ष जीवित रहते हैं । पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज बारह पुरुषों के दीक्षा गुरु होते हैं और अस्सी वर्ष की आयु पर्यन्त पृथ्वी पर विहार करने वाले होते हैं । उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज बारह पुरुषों और बारह नारियों के दीक्षा गुरु होते हैं, मिष्टान्न भोजी होते हैं और पृथ्वी पर विहार करते हुए अस्सी वर्ष की आयु तक जीवित रहते हैं ।रेवती नक्षत्र में दीक्षित मुनिराज मिष्टान्न भोजी होते हैं और आचार्य पद को प्राप्त करने के पश्चात् बीस वर्ष जीवित रहते हैं । इस प्रकार नक्षत्रमाला में दीक्षा होने पर फल माना जाता है और इसी कारण पूर्वाचार्यों के द्वारा आगम का उल्लंघन वर्जित किया जाता है — अनुचित काल में दीक्षा का निषेध किया जाता है ॥२७–३२॥

[आधार : आचार्य महावीरकीर्ति महाराज का संकलन]

****

द्वादश-व्रत-नक्षत्राणि

प्रथममश्विनी नाम द्वितीयं रोहिणी तथा ।

ततो मृगशिरा-नाम चतुर्थं च पुनर्वसु ॥१॥

नक्षत्रं पञ्चमं पुष्यं षष्ठमुत्तर-फाल्गुनी ।

सप्तमं हस्त-नक्षत्रं चित्रा-नक्षत्रमष्टमम् ॥२॥

नवमं स्वाति-नक्षत्रं दशमं त्वनुराधिका ।

नक्षत्रमुत्तराषाढा ह्येकादशतमं भवेत् ॥३॥

श्रवणं स्याद्-द्वादशमं धनिष्ठा तदनु स्मृतम् ।

उत्तरा-भाद्रपन्नाम नक्षत्रं तु चतुर्दशम् ॥४॥

ऋक्षं शतभिषा-नाम पञ्चदशतमं ततः ।

षोडशतम-नक्षत्रं रेवती-नामकं भवेत् ॥५॥

एतानि षोडशर्क्षाणि द्वादश-व्रत-धारणे ।

ज्ञातव्यानि प्रशस्तानि पूर्वाचार्यानुसारतः ॥६॥

दिवसेषु नहि ग्राह्यौ शनि-मङ्गल-वासरौ ।

न विष्टि-करणं ग्राह्यं हेया रिक्ता-तिथिः सदा ॥७॥

अर्थ :– पहला अश्विनी नक्षत्र, दूसरा रोहिणी नक्षत्र, तीसरा मृगशिरा नक्षत्र, चौथा पुनर्वसु नक्षत्र, पञ्चम पुष्य नक्षत्र, छट्ठा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, सातवाँ हस्त नक्षत्र, आठवाँ चित्रा नक्षत्र, नवम स्वाति नक्षत्र, दशम अनुराधा नक्षत्र, ग्यारहवाँ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, बारहवाँ श्रवण, तेरहवाँ धनिष्ठा नक्षत्र, चौदहवाँ उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र, पंद्रहवाँ शतभिषा नक्षत्र और सोलहवाँ रेवती नक्षत्र; पूर्वाचार्यों के अनुसार यह सोलह नक्षत्र पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, ऐसे बारह व्रत धारण करने में प्रशस्त—शुभ जानने योग्य हैं । दिनों में शनि और मंगलवार ग्राह्य नहीं हैं, करणों में विष्टि करण अग्राह्य है और तिथियों में रिक्ता—चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि त्याज्य हैं ।

[सन्दर्भ : वत्थुविज्जा, आर्यिका विशुद्धमति माताजी]

****

ब्रह्मचर्य-व्रत-नक्षत्राणि

पूर्वाभाद्रपदा मूलं धनिष्ठा च विशाखिका ।

ब्रह्मचर्यव्रतादाने श्लाघ्यमृक्षचतुष्टयम् ॥१॥

अर्थ :– ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने के निमित्त विशाखा, मूल, धनिष्ठा और पूर्वा भाद्रपद, यह चार नक्षत्र प्रशंसनीय हैं ।

[सन्दर्भ : वत्थुविज्जा, आर्यिका विशुद्धमति माताजी]

****

लोचे वर्ज्य-नक्षत्राणि

भरणी कृत्तिका चापि मघा वापि विशाखिका ।

लोचे चत्वारि वर्ज्यानि नक्षत्राणि सदा बुधैः ॥१॥

अर्थ :– ज्ञानी जनों द्वारा केशलोंच में भरणी, कृत्तिका, मघा और विशाखा, यह चार नक्षत्र सदा वर्जनीय हैं ।

[आधार : सर्वोपयोगि-श्लोक-संग्रह]

****

卐卐卐卐卐卐卐